

स्त्री विमर्श से परे स्त्री सशक्तीकरण का उपन्यास है 'विपश्यना'



पिछले एक दशक से इंदिरा दाँगी अपनी रचनाशीलता से हिंदी के कथाप्रेमियों के बीच चर्चित रही हैं। उनका कहानी और उपन्यास लेखन समान रूप से जारी है। हाँ, नाटक और अनुवाद के क्षेत्र में भी इंदिरा सक्रिय हैं। इनके नाटकों का देश-विदेश में मंचन ही नहीं हुआ है, वे काफ़ी सराहे भी गए हैं। बहरहाल, यहाँ इंदिरा दाँगी के कथा-सृजन विशेषतः उपन्यास लेखन पर चर्चा केंद्रित होगी। 'हवेली सनातनपुर' और 'रपटीले राजपथ' दोनों उपन्यासों से मिली सफलता के बाद इंदिरा दाँगी का तीसरा उपन्यास भारतीय ज्ञानपीठ से अभी-अभी प्रकाशित हुआ है 'विपश्यना'।

जहाँ तक स्मरण हो रहा है, 'विपश्यना' शीर्षक से प्रकाशित इंदिरा का उपन्यास संभवतः हिंदी में पहला उपन्यास है, अपनी सीमित जानकारी के अनुसार कहा जा सकता है कि अब तक कोई उपन्यास इस शीर्षक से नहीं था। आम पाठक के लिए शीर्षक तो कठिन है, लेकिन इससे गांभीर्य भी झलकता है और कथाकार के कथा-स्वभाव का परिचय भी मिलता है कि उसके लिए कथा-लेखन सनसनी उत्पन्न करने, चटखारे लेते हुए पढ़ने अथवा कामुकता को उद्दीप्त करने का माध्यम नहीं है। बल्कि यह जीवन के वृहत्तर संदर्भों और परिप्रेक्ष्य को कथा के बहाने रूपायित करने का एक ज़रिया है।

'हवेली सनातनपुर' और 'रपटीले राजपथ' में इसका आगाज़ हुआ था तो निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि 'विपश्यना' में उसका विकास हुआ है। यानी, इस उपन्यास तक आते-आते इंदिरा का कथा-लेखनवाला ग्राफ़ ऊर्ध्वगामी हुआ है। हाथ में यह उपन्यास लेते ही सबसे पहले यह सवाल खड़ा होता है कि आखिर 'विपश्यना' है क्या? बौद्ध धर्म में तत्व परिज्ञान की प्रकृतिवाली प्रज्ञा को 'विपश्यना' कहा जाता है। शांत और पवित्र अंतर्दृष्टि, उदारदृष्टि आदि के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग होता है। अपने भीतर के आलोक में बाहर की दुनिया को विशेष ढंग से देखना, जीना और अपनी तथा सत्य की खोज करने की कथा को कथाकार ने सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया है।

विपश्यना एक प्राचीन ध्यान विधि भी है। देखकर लौटने के अर्थ में इसका प्रयोग होता है। इसे आत्म निरीक्षण और आत्म शुद्धि की सबसे बेहतरीन पद्धति माना गया है। हजारों साल पहले भगवान बुद्ध ने इसी ध्यान विधि के जरिए बुद्धत्व हासिल किया था। यही नहीं, उन्होंने इसका अभ्यास अपने अनुयायियों को भी कराया था।

उपन्यास के समर्पण पृष्ठ में बस इतना अंकित है “... कहां हो माँ ?” उपन्यास के प्रारंभ, मध्य और अंत में माँ की खोज है। कथा-नायिका रिया का यही सर्वोपरि लक्ष्य है। सवाल यह है कि विश्वविद्यालयी शिक्षा प्राप्त रिया के लिए माँ की खोज सर्वोपरि क्यों हो जाती है ? क्या यह महज़ भावुकता के कारण है अथवा उसकी अतीतजीविता है ? इस बिंदु पर आगे विचार किया जाएगा। दूसरी कथा-नायिका चेतना भी खोज में लगी हुई है। उसका अन्वेषण अपने आपको ढूँढना है। आत्मान्वेषण है। ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों कथा-नायिकाओं के माध्यम से आत्मानुसंधान और आत्मशुद्धि की पद्धतियों को आज के संदर्भ में प्रस्तुत करने के उद्देश्य से उपन्यासकार की यह कृति रची गई है। निर्वाण की प्राप्ति नहीं, जीवन-संघर्ष के पथ पर चलकर उसे सार्थक बनाने की यात्रा के रूप में भी ‘विपश्यना’ का पाठ किया जा सकता है।

जैसा कि उल्लेख किया गया है इस उपन्यास में दो नायिकाएँ हैं। एक रिया और दूसरी चेतना। दोनों सहपाठी थीं। सहेली थीं। उच्चशिक्षा प्राप्त। दिल्ली में अपने-अपने पति के साथ रहती थीं। लेकिन, दोनों के स्वभाव और व्यक्तित्व में बहुत अंतर है। दो भिन्न जीवन यात्री हैं। रिया बहुत हद तक ‘भारतीय स्त्री’ के खाँचे में फ़िट होती है। तभी तो उसका पति उसे डेढ़ महीने की शिशु-कन्या के साथ महज़ एक चेक के साथ विदा कर देता है तो बिना कोई प्रतिवाद किए वह भोपाल अपनी सहेली के पास चली आती है। परंतु उसके अंदर सख्त-चट्टान की तरह कुछ कर दिखाने का जज्बा है, दृढ़ संकल्प तथा अदम्य जिजीविषा है। उसमें स्वाभिमान है। उसके लिए स्त्री-विमर्श का स्वरूप है—“स्त्री-विमर्श झंडा नहीं है जिसे उठाए फ़िरा जाए। ये जो जीवन है यार मेरा-तुम्हारा ; विमनहूड का यूनिवर्सल दुःख कि स्त्री को मादा पहले समझा जाता है, मनुष्य बाद में।” कर्तव्य के प्रति गहरी निष्ठा भी।

उसके लिए केवल कमाना, खाना और मर जाने का मतलब जीवन नहीं है। उसमें दूसरों के प्रति संवेदनशीलता है। वह यथासंभव ज़रूरतमंदों के उत्थान के लिए प्रयास करती है। एक मित्र, एंट्रेपीनर, पत्रकार, माँ, बेटी आदि के रूप में वह सफल रही है। दूसरी ओर कॉलेज की शिक्षिका, पीएच डी की छात्रा अपने पति ज्ञान को दिल्ली में छोड़ कर भोपाल पहुँची हुई चेतना ‘रेडिकल फ़ेमिनिज्म’ की घनघोर प्रवक्ता है। पिछले ढाई साल से ज्ञान से उसका कोई संपर्क तक नहीं है। उपन्यास के उत्तरार्ध में पता चलता है कि ज्ञान ने चेतना को पूरा स्पेस दिया है। वह पति से बढ़कर मित्र है। खान-पान, सोच-विचार आदि में चेतना की जीवन-शैली अव्यवस्थित है। ज्ञान से दूर रहकर वह अपने विवाहित सहकर्मी बाबू से आकर्षित होती है। मित्रता होती है। शारीरिक संबंध बनाए रखती है। बावजूद इसके वह अकेलेपन का शिकार है। डिप्रेशन से ग्रस्त है। थोड़े दिनों के लिए रिया को सहारा देकर वह अपने को मालकिन और रिया को नौकराइन समझ बैठती है।

रिया की तरह चेतना के सोच-विचार उदार नहीं है। आत्मकेंद्रिकता अधिक है चेतना में। उसमें उच्चमन्यता के भाव प्रबल हैं। मंचों से भाषण देनेवाली चेतना और असली जीवन की चेतना में बड़ा भारी अंतर है। कथाकार ने मंचों से चेतना के भाषण के बहाने उसके स्त्री पैरोकार रूप से अपने पाठकों को परिचित कराया है—“देखो मैं कमाती हूँ। फ़िल्म का आखिरी शो देख कर देर रात अपनी कार से घर लौटती हूँ। पर्यटन स्थलों पर अकेली घूमती हूँ। डिस्कोथेक जाती हूँ। हर तरह के कपड़े पहनती हूँ। अपने आप पर पूरी कमाई खर्च करती हूँ। जिस तरह पसंद है, उसी तरह जीती हूँ। शादी मेरी नज़र में गुलामी है इसलिए मैं दिल्ली के अपने पति, उसका फ़्लैट, प्लॉट, कार, ज्वेलरी वाली सब सुखोंदार

ज़िंदगी के पिंजरे से निकल कर आज़ाद चिड़िया की तरह यहाँ आ बसी हूँ।

मैं एक ऐसी चिड़िया हूँ जिसे सिर्फ़ अपने पंखों पर भरोसा है, किसी डाल पर नहीं। मेरा एक मित्र है जो मेरी बौद्धिक और कभी दैहिक भी ज़रूरत पूरी करता है। मैं खाना नहीं पकाती। मैंने बच्चे नहीं पैदा किए। मैंने अपने आप को उन बेड़ियों से आज़ाद कर लिया है जिन्होंने औरत को सदियों से लहलुहान किया है। एक बोल्लड स्त्री के रूप में चेतना ने अपने आप को स्थापित करने का प्रयास किया है। लेकिन धीरे-धीरे उसे समझ में आता है कि वह जिस स्वतंत्रता की चाहत रखती थी, वह एक हद के बाद सीमित हो जाती है—“अपनी जिस स्वतंत्रता को वो नारी-विमर्श की पताका समझती थी क्या वो आज़ादी जंजीर की लंबाई तक की आज़ादी थी?” कथाकार ने मौजूदा स्त्री-विमर्श के अंतर्विरोध को प्रकट करते हुए लिखा है—“मंचों पर स्त्री-विमर्श की प्रखर वक्ता निजी ज़िंदगी में कितनी बड़ी स्त्री-विरोधी है।”

चेतना का माँ की तस्वीर के सामने आत्म-स्वीकारोक्ति मौजूदा स्त्री-चिंतन के सामने नए प्रश्न खड़ा करती है। यह इसलिए कि जो चेतना कभी अकेलेपन के लिए दिल्ली से भागकर भोपाल आई थी वह अकेलेपन से भागकर सामाजिक सुरक्षा की खोज में अपने पति ज्ञान के पास पहुँच जाती है। यही चेतना अपने पति के पास जाने के पहले अपनी कार रिया को दे देती है। उसमें ग़ज़ब का हृदय परिवर्तन दिखाया गया है। वह रिया से कहती है—“जीवन का अंतिम सत्य है – खुश रहना। और खुश रहना अपने अंतिम रूप में संभव होता है जाँय ऑफ़ गिविंग से। धर्म जिसे कहता है- लोकमंगल। परहित। दूसरों से प्यार करना। मैं जान गई हूँ कि खुश रहना ही जीवन का सबसे बड़ा सत्य है और ये साकार होता है—दूसरों को खुश रहने से।” इसी चेतना ने उपन्यास के अंतिम भाग में एक साल की दिव्यांग बच्ची को गोद लेकर अपने जीवन का सार जान लिया। सेवा को ही जीवन का सबसे बड़ा सत्य मान कर अपनी विपश्यना पूरी कर ली।

इंदिरा दाँगी ने रिया और चेतना के माध्यम से स्त्री-प्रश्न, स्त्री-अस्मिता, स्त्री-संघर्ष, स्त्री-स्वतंत्रता, स्त्री सशक्तीकरण आदि के दोनों रूपों को प्रस्तुत किया है। और स्त्री-विमर्श के अंतर्विरोधों को भी उजागर किया है। इतना अवश्य है कि कथाकार ने स्त्री-चिंतन के किसी रूप की तरफ़दारी नहीं की है। उसने तटस्थता के साथ दोनों रूपों को अपने पाठकों के समक्ष पेश कर दिया है। लेकिन उपन्यास से गुजर कर इतना ज़रूर कहा जा सकता है कि चेतना की तुलना में रिया कथाकार के हृदय के अधिक करीब है। सघन अंधेरे में भी उजास की खोज करने और अपनी मेहनत तथा प्रतिभा के बलबूते पर उजास को हासिल करने में रिया सफल होती है। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अपना हौसला बुलंद करते हुए संघर्ष करते हुए ‘भारतीय नारी’ रिया बुलंदी तक पहुँचती है। इसलिए पूरे उपन्यास में वह सर्वाधिक प्रभावित करने वाली महत्वपूर्ण पात्र है। उसके व्यक्तित्व से सकारात्मक सोच का विकास होता है। ‘पॉज़िटिव वाइब्ज़’ मिलती हैं।

ऐसे पात्र लंबे अरसे तक याद रह जाते हैं। रिया के लिए स्त्री-विमर्श अपने स्वाभिमान को बनाए रखने के साथ-साथ अपने आस-पास की स्त्रियों और लड़कियों को भी स्वाभिमान के साथ जीने में अपनी ओर से भरसक प्रयास करना है। मसलन, उसकी बेटा दुर्गा की देख-भाल करने वाली लड़की आरती से रिया का मधुर संबंध देखा जा सकता है। कई प्रसंगों में रिया का बेहतर मनुष्य बार-बार उभर कर सामने आता है।

माना कि 'विपश्यना' में स्त्री विमर्श और स्त्री सशक्तीकरण की कथात्मक अभिव्यक्ति है। लेकिन, इसके रेंज को यहीं तक सीमित करना उचित नहीं होगा। इस उपन्यास में विवाहेतर संबंध, बेरोज़गारी, अशिक्षा, पीड़ित जनता की कराह, पूँजी, सत्ता और मीडिया के गठबंधन और उनकी चालाकियों, राजनीति की धूर्तताओं, समाज में व्याप्त शोषण और अन्य समस्याओं, विडंबनाओं और विसंगतियों पर भी प्रसंगतया विचार किया गया है। इससे उपन्यासकार की रचना-दृष्टि से रू-ब-रू हुआ जा सकता है। रचनाकार के सरोकारों से परिचित हुआ जा सकता है।

'विपश्यना' में विवाहेतर संबंध का मर्यादित चित्रण है। रिया के पति रंजीत और लिली, चेतना और बाबू, रिया और आमिर के प्रसंग में विवाहेतर संबंध वर्णित है। तलाक़शुदा रिया और आमिर के मामले को कुछ ज्यादा विस्तार के साथ दिखाया गया है। यहाँ साहचर्य का प्रेम अधिक मुखर हुआ है। कथाकार ने बड़ी शिद्दत और संवेदनशीलता के साथ इस कथा को प्रस्तुत किया है।

भारत में बेरोज़गारी भयानक समस्या के रूप में खड़ी है। ऐसा नहीं है कि यह समस्या इधर के कुछ वर्षों में प्रकट हुई है। लेकिन इतना तो निश्चित है कि पिछले कुछ वर्षों से यह समस्या विकट से विकटतर हुई है। बेरोज़गारी का इंडेक्स बढ़ता जा रहा है। पढ़े-लिखे दर-दर भटक रहे हैं। इस उपन्यास में भी चेतना अपनी सहेली से बेरोज़गारी की स्थिति से परिचित कराते हुए कहती है—“सिर्फ़ डिग्री से कुछ नहीं होता आजकल; कितना कॉम्पटिशन है, अभी तुम जानती नहीं हो? — — — एक-से-एक टेलेंटेड और क्वालीफ़ायड लड़के-लड़कियाँ महीनों-सालों भटकते हैं एक अदद नौकरी के लिए। — — — चपरासी की सरकारी वेकेंसी निकलती है तो यहाँ पीएच डी डिग्री अप्लाई करते हैं।”

सत्ता, पूँजी और मीडिया की त्रयी ने जनतंत्र का ही नहीं देश की जो दुर्गति कर रखी है, वह शायद ही किसी से छुपा हो। अपने अध्यवसाय और गहरी निष्ठा के साथ भोपाल गैस त्रासदी से पीड़ित लोगों की दुर्दशा और उस स्थिति के लिए ज़िम्मेदार अधिकारियों और नेताओं की काली करतूतें उजागर करने वाला रिया का कलम (स्तंभ) बंद कर दिया जाता है। रिया अपनी नौकरी छोड़ने के लिए बाध्य हो जाती है। रिया की इस घटना से गुजर कर पाठकों के सामने वे प्रतिभाशाली पत्रकारों के चेहरे उद्भासित हो उठाते हैं जिन्होंने सत्ता से सवाल पूछ लिया था तो उन्हें अपनी नौकरी से हाथ धोना पड़ा। आज नब्बे से अधिक प्रतिशत मीडिया घरानों के स्वामी पूँजीपति हैं। इसलिए, लोकतंत्र का चौथा खंभा बिकाऊ हो चुका है। ऐसे में कैसा विरोध और कैसा प्रतिरोध ! कहीं मर्ज़ी के खिलाफ़ आवाज़ भी उठती है तो आवाज़ उठाने वाले की छुट्टी कर दी जाती है। इसलिए जिनमें आत्म-सम्मान हो, स्वाभिमान बचा हो वे ऐसी स्थिति आने के पहले ही रिया की तरह त्यागपत्र सौंप देने में ही अपनी भलाई समझते हैं।

भोपाल गैस ट्रेजेडी से पीड़ित लोगों की दास्तान 'विधवा कॉलोनी' और 'गिद्ध भोज' शीर्षक परिच्छेदों के ज़रिए बयाँ हुई है। जैसा कि उल्लेख किया गया है यहाँ सत्ता से सीधी टक्कर है। ज़मीन से जुड़ा पत्रकार भली-भाँति समझता है—“वैसे भी इन गैस पीड़ितों के नाम पर कौन क्या करता है सिवाय कमाने के। — जो मर गए वो फ़ायदे में रहे। जो बच गए, उनका जीवन नर्क है।” भोपाल गैस त्रासदी का व्यापक चित्रण इस उपन्यास में अभाव है। शायद ऐसा अवसर भी नहीं था। इसे पारंपरिक शब्दावली में प्रासंगिक कथा कही जा सकती है। लेकिन इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि पाठकों को उस भयानक त्रासद का कुछ आभास देने में उपन्यास असफल नहीं है।

इस उपन्यास में उच्च-शिक्षा प्राप्त रिया कामासिक तीन हजार रुपए के लिए किसी बुजुर्ग के यहाँ सुबह-शाम खाना बनाने जाना, बाई का काम करनाभले ही पाठकों को कुछ अस्वाभाविक लगे, लेकिन यही तो हमारा सामाजिक यथार्थ है। भूमंडलीकरण ने मानव समाज को कैसी शोचनीय स्थिति में धकेल दिया है, भला इसे कौ नहीं जानता? रिया की जीवनस्थितियों और मानसिकता के अनुसार यह कतई आरोपित नहीं लगता है। उसके लिए ज़रूरी था कि वह अपनी और बेटी की ज़िंदगी बचाए। और इसके लिए उसे किसी शुरुआत की बहुत ज़रूरत थी। अपनी कमाई की सख्त ज़रूरत थी। पुनः उसके लिए कोई भी काम न छोटा था और न बड़ा। इसके बाद वह अपनी विद्या, बुद्धि और परिश्रम के आधार पर चाहे नौकरी में हो अथवा व्यापार में रिया प्रसिद्ध और प्रशंसनीय हो जाती है। यही महत्वपूर्ण है।

अकेली स्त्री बेसहारे की स्थिति में भी तमाम प्रतिकूलताओं से जूझते हुए, कभी हार स्वीकार किए बिना अंततः कैसे एक्सेल कर सकती है; इसे रिया के माध्यम से जाना और समझा जा सकता है। उपन्यासकार की यह दृष्टि उपन्यास के सौष्ठव को नया आयाम देती है। घटना-प्रवाह हो अथवा कथा-भाषा, पात्रों की मनःस्थिति हो अथवा कथा का देश-काल; इंदिरा दाँगी ने सहज और स्वाभाविक ढंग से प्रस्तुत करने का भरसक प्रयास किया है। पूरे उपन्यास में कथा का प्रवाह बना हुआ है। नौ परिच्छेदों में विभाजित इस उपन्यास में परिच्छेदों के शीर्षक कथा के अनुकूल हैं। पठनीयता बनी रहती है। उबाऊ प्रतीत नहीं होता है। यह किसी भी कथा-कृति के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है कि वह सबसे पहले पाठक से कृति को पढ़वा ले। पठनीयता के अभाव में कोई भी कृति महत्वपूर्ण नहीं हो पाती है। इस दृष्टि से 'विपश्यना' शीर्षक उपन्यास को सफल उपन्यास के रूप में स्वीकार करने में किसी को शायद ही कोई आपत्ति हो।

यह स्त्री विमर्श से परे स्त्री सशक्तीकरण का उपन्यास है। स्त्री का ही सशक्तीकरण नहीं, समाज के सशक्तीकरण में स्त्री की भूमिका का रेखांकन हुआ है। इसमें संवेदना और यथार्थ का ग़ज़ब तालमेल हुआ है। 'कहाँ हो माँ' कथा के केंद्र में है? माँ की तलाश अर्थात् भूमंडलीकरण के दौर में मानवीय मूल्यों के अन्वेषण और उनकी महत्ता की स्थापना। इससे कथा दृष्टि का परिचय मिलता है। यूनियन कार्बाइड कारखाने से गैस के रिसाव के चलते भोपाल गैस त्रासदी के बहाने अपने समय और समाज के यथार्थ का उद्घाटन भी हुआ है इस औपन्यासिक कृति में। कारुणिक दृश्यों का चित्रण है।

एक तलाक़शुदा स्त्री रिया की संघर्षगाथा, जिजीविषा, जीवन की सफलता और सार्थकता आदि को बड़े असरदार तरीके से अंकित करने में इंदिरा दाँगी कामयाब रही हैं। रिया, रंजीत, आमिर, चेतना, ज्ञान, बाबू, स्मिता जैसे पात्रों के माध्यम से हमारा समय और उसके अंतर्विरोधों, विडंबनाओं आदि को मूर्त किया गया है। जीवन के सार को और उसके सबसे बड़े सत्य को जान लेने की यात्रा कराने वाले इस उपन्यास में कहीं भी कुछ आरोपित अथवा आयातित प्रतीत नहीं होता है। उपन्यास से गुज़रकर लगता है कि कथाकार ने हमारे इर्द-गिर्द में घटित घटनाओं और प्रसंगों को अपनी रचना-दृष्टि के साथ हमसे साझा किया है। बिना भाषाई ताम-झाम के, बिना किसी जर्गन के सहारे बिल्कुल सहज, सरल, स्वाभाविक परंतु असरदार तरीके से अपनी चिंता और चेतना को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने वाले कथाकारों में इंदिरा दाँगी का नाम भी निस्संदेह शामिल किया जा सकता है।

विपश्यना (उपन्यास)
लेखिका : इंदिरा दांगी
ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली

समीक्षक:अरुण होता
संपर्क: 2 एफ, धर्मतल्ला रोड, कस्बा, कोलकाता, 700 042मोबाइल- 9434884339

